P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-1* April- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

श्रीमद्भगवद्गीता में अध्यात्म सम्बन्धी अवधारणा

सारांश

आत्मप्रज्ञ होने हेतु अर्थात् अपने भीतर के चेतन तत्त्व के ज्ञान हेतु जितने भी प्रयास किये गए हैं उन सभी में *श्रीमद्भगवद्गीता* द्वारा सुझाये गए मार्ग को अत्यंत व्यावहारिक माना जा सकता है। *श्रीमद्भगवद्गीता* में आत्मा, ब्रह्म आदि आध्यात्मिक प्रत्ययों का सूक्ष्म निरूपण किया गया है और जीवात्मा–परमात्मा सम्बद्ध पर विस्तार से चर्चा की गयी है। इसमें ज्ञान, कर्म व भक्ति योग के द्वारा मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त किया गया है। इसमें जीवात्मा को अध्यात्म बताते हुए उसे परमात्मा का ही अंश मन गया है। साथ ही आत्मा को अमर बताया गया है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नए वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार आत्मा भी पुराने शरीर को त्याग कर नया शरीर धारण करती है। *श्रीमद्भगवद्गीता* में अध्यात्म जगत के प्रमुख तथ्यों आत्मा, परमात्मा अर्थात् ब्रह्म व उसकी आदिशक्ति माया और उसके त्रिगुणों, ज्ञान, वैराग्य, मोक्ष व उसकी प्राप्ति के उपाय, संसार, बंधन, धर्म, अर्थ, काम, जन्म–मृत्यु, स्थितप्रज्ञ आदि का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। लोक कल्याण की भावना से ओत–प्रोत *श्रीमद्भगवद्गीता* अध्यात्म जैसे विषय के विवेचन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

मुख्य शब्द : श्रीमद्भगवद्गीता, अध्यात्म, आत्मा, जीवात्मा, परमात्मा, ब्रह्म, जीव, उपनिषद, ज्ञान, कर्म, भक्ति, सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, बंधन, मोक्ष, जगत्।

आशुतोष कुमार सिंह
सहायक आचार्य,
प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज,
बी.एच.यू., वाराणसी

प्रस्तावना

अध्यात्म का अर्थ है अपने भीतर के चेतन तत्व को जानना, मानना व दर्शन करना अर्थात् स्वयं के बारे में जानना या आत्मप्रज्ञ होना। सामान्यतया भक्ति या ईश्वर विषयक चर्चा को अध्यात्म कहा जाता है किन्तु अध्यात्म का मूल अर्थ ईश्वरीय चर्चा या ईश्वर ज्ञान कदापि नहीं है। *श्रीमद्भगवद्गीता* में अर्जुन द्वारा द्वारा श्री कृष्ण से पूछा जाता है कि हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म क्या है ? और कर्म के मायने क्या हैं ?[1] इसके उत्तर में श्री कृष्ण बताते हैं कि–

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।।[2]

अर्थात् जो सबसे अक्षय तत्व है वह ब्रह्म है, स्वरुप अर्थात् जीवात्मा 'अध्यात्म' नाम से कहा जाता है तथा प्राणी मात्र में भाव उत्पन्न करने वाला जो त्याग है, वह कर्म नाम से कहा गया है। इस प्रकार परम अक्षर अर्थात् कभी भी नष्ट न होने वाला (अविनाशी) तत्व ब्रह्म है[3] और प्रत्येक वस्तु का अपना मूलभाव (स्वाभाव) अध्यात्म है। अध्यात्म पारलौकिक विश्लेषण या दर्शन नहीं है। अध्यात्म का तात्पर्य यह है कि जो अपना भाव है अर्थात् प्रत्येक जीव की एक–एक शरीर में पृथक–पृथक सत्ता है, वही अध्यात्म है। समस्त सृष्टिगत भावों की व्याख्या जब मनुष्य शरीर के द्वारा (शारीरिक सन्दर्भ में) की जाती है तो उसे ही आध्यात्मिक व्याख्या कहते हैं। *श्रीमद्भगवद्गीता* में पुरुषोत्तम को एक मात्र परमार्थ तत्व माना गया है और इसे ईश्वर, परमात्मा, परमपुरुष, वासुदेव कहा गया है। *श्रीमद्भगवद्गीता* में मूल तत्व एकमात्र पुरुषोत्तम होते हुए भी उसके तीन रूप हैं – क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम। *श्रीमद्भगवद्गीता* का यह पुरुषत्रय सिद्धांत ही उसके ज्ञान, कर्म और भक्ति के समन्वय का आधार है।[4] श्री कृष्ण ने कहा है – जो मुझमें शरण लेते हैं और बुढ़ापा तथा मृत्यु से मुक्ति पाने की कोशिश करते हैं, वे ब्रह्म, अध्यात्म और कर्म के सम्बन्ध में सब कुछ जान जाते हैं।[5] इस प्रकार अपने स्वरुप अथवा जीवात्मा को अध्यात्म कहा गया है। आत्मा परमात्मा का ही अंश है। अध्यात्म की अनुभूति सभी प्राणियों में समान रूप से निरंतर होती रहती है। हम क्षणिक संबंधों, क्षणिक वस्तुओं को अपना जानकर उससे आनंद प्राप्त करते हैं जबकि प्रत्येक क्षण साथ रहने वाला शरीर भी हमें अपना गुलाम बना लेता है। सत्य ज्ञान से ही हम वस्तुतः पूर्ण आनंद की प्राप्ति

कर सकते हैं और यह तभी संभव है जब हम जीवात्मा–परमात्मा सम्बन्ध से भली भांति परिचित हो जाएँ। ऐसे अध्यात्म सम्बन्धी विवेचन के लिए *श्रीमद्भगवद्गीता* एक अद्वितीय ग्रन्थ है।

अध्ययन का उद्देश्य

जीवन के व्यावहारिक पहलुओं के विवेचन के दृष्टिकोण से *श्रीमद्भगवद्गीता* सहज ही अपने ओर ध्यान आकृष्ट कर लेती है। इस ग्रन्थ की खूबी यह है कि इसमें अत्यंत सरल ढंग से इहलोक व परलोक की बातों को बताते हुए मोक्ष प्राप्ति के उपाय बताये गये हैं। आध्यात्मिक तत्वों के निरूपण की दृष्टि से तो यह एक अद्भुत ग्रन्थ है। प्रस्तुत शोध पत्र का ध्येय *श्रीमद्भगवद्गीता* में बताये गए अध्यात्म सम्बन्धी तत्वों का पुनर्विश्लेषण कर जगत को इसके कल्याणकारी, उदारवादी दृष्टिकोण से परिचित कराना है।

अध्ययन काल

इस शोध–पत्र को तैयार करने में लेखक को एक वर्ष (2017–18) का समय लगा।

साहित्यावलोकन

भारतीय ग्रंथों में लोकप्रियता की बात की जाये तो शायद *श्रीमद्भगवद्गीता* का स्थान अग्रगण्य है। अत्यंत लोकप्रिय होने के चलते इस महान ग्रन्थ पर अनेकानेक टीकाएँ व टिप्पड़ियाँ लिखी गयी हैं। साथ ही विभिन्न विद्वानों द्वारा इस ग्रन्थ पर अपने अपने तरीके से व्याख्याएं की गयी हैं। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने इस ग्रन्थ पर अत्यंत प्रसिद्ध *श्रीमद्भगवद्गीतारहस्य* नामक पुस्तक लिखी जिसका श्रीमान माधवराव सप्रे जी ने हिंदी भाषा में अनुवाद (1988 ई.) किया है। इस शोध पत्र को तैयार करने में इस ग्रन्थ के अतिरिक्त केशवदेव आचार्य द्वारा लिखा गया *गीता नवनीत* (1965 ई.), स्वामी रामसुखदास की *श्रीमद्भगवद्गीता साधक–संजीवनी* (परिशिष्ट सहित) हिंदी–टीका (2018 ई.) पंकज चँद गुप्ता द्वारा अनूदित *श्रीमद्भगवद्गीता*, इस्कान ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित प्रभुपाद कृ त *श्रीमद्भगवद्गीता* यथारूप (1972 ई.), श्री दीनानाथ भार्गव 'दिनेश' कृत श्रीमद्भगवद्गीता का पद्यानुवाद *श्रीहरिगीता*, शंकराचार्य का *गीताभाष्य*, मोतीलाल शास्त्री की *गीतामूलविज्ञानभाष्यम्* (1991 ई.), गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी कृत *गीता प्रवचन भाष्य* (2006 ई.), विनोभा भावे कृत गीता–प्रवचन (1956 ई.), रॉबर्ट स्टीवेंशन द्वारा लिखित *तिलक एंड द भगवद्गीताज़ डॉक्ट्राइन ऑफ कर्मयोगा* (1986 ई.), मधुसूदन ओझा कृत *श्रीमद्भगवद्गीतायाः विज्ञानभाष्यम्, कांडचतुष्ट्यात्मकम* और विभिन्न उपनिषदों यथा–*कठोपनिषद्, बृहदरण्यकोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, ईशावास्योपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्* आदि व *विवेकचूड़ामणि, सांख्यकारिका, वेदांतसार, श्रीविष्णुपुराण* आदि ग्रंथों की सहायता ली गयी है।

विषय वस्तु

प्राचीनकाल में भारतीय मनीषियों ने आध्यात्मिक दृष्टि से जो सूक्ष्म चिन्तन किया वह उपनिषद् ग्रन्थों में संगृहीत है। भारतीय दर्शन के उत्पन्नकर्ता उपनिषद् ऐसे प्रकाश पुंज हैं जिनके प्रकाश में ब्रह्मतत्व का चरम लक्ष्य मोक्ष या मुक्ति माना गया है। मोक्ष को मानव जीवन का परम पुरूषार्थ माना गया है। औपनिषदीय ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति सहज हो जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि आत्मज्ञान की दृष्टि से उपनिषदों का महत्व सर्वोपरि है। औपनिषदीय ज्ञान का अन्वेषण करके अनेकानेक ऋचाएँ व टिप्पणियाँ लिखी गयी हैं, उन सभी में *श्रीमद्भगवद्गीता* का स्थान सर्वोपरि है। उपनिषद् रूपी गौओं का अमृतमय दुग्ध गीता को कहा गया है –

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।[6]

मनुष्यमात्र के उद्धार के लिये तीन मार्ग प्रस्थानत्रय के नाम से जाने जाते हैं – एक वैदिक प्रस्थान है जिसको *उपनिषद्* कहते हैं, दूसरा दार्शनिक प्रस्थान है जिसको *ब्रह्मसूत्र* कहते हैं और तीसरा स्मार्त प्रस्थान है जिसको *श्रीमद्भगवद्गीता* कहते हैं। उपनिषदों में मंत्र हैं, *ब्रह्मसूत्र* में सूत्र हैं और *श्रीमद्भगवद्गीता* में श्लोक हैं। *श्रीमद्भगवद्गीता* में श्लोक होते हुये भी भगवान की वाणी होने से मंत्र ही हैं। इन श्लोकों के सारगर्भित होने से इनको सूत्र भी कह सकते हैं। उपनिषद् अधिकारी मनुष्यों के काम की, ब्रह्मसूत्र विद्वानों के काम की और *श्रीमद्भगवद्गीता* सभी के काम की वस्तु है क्योंकि यह भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निकली है–

'या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनीः सृता'[7]

इसमें अध्यात्म जगत् के प्रमुख तथ्यों यथा–आत्मा, परमात्मा अर्थात् ब्रह्म व उसकी आदि शक्ति माया और उसके सत्त्वरजतमाादि त्रिगुणों, ज्ञान, वैराग्य, मोक्ष व उसकी प्राप्ति के उपाय, सृष्टि–प्रक्रिया, संसार, बन्धन, धर्म अर्थ, काम, जन्म–मृत्यु, जीव की गति, स्थितप्रज्ञ या धीरमुनि या जीवन्मुक्त या त्रिगुणातीतादि के स्वरूप पर बड़े ही मार्मिक या रोचक ढ़ंग से संक्षिप्त रूप में दृष्टान्त शैली के माध्यम से प्रकाश डाला गया है। यह आत्मा ब्रह्म का ही अंश है–

जीवलोके जीवभूतः सनातनः'[8]

ब्रह्म ही अपने अंश के विषय में व्याख्या करने में सर्वाधिक सक्षम है, इस गीता के वक्ता भगवान श्रीकृष्ण हैं जो स्वयं ही ब्रह्म हैं। आत्मा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुये उन्होंने कहा है–

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[9]

यह आत्मा किसी भी काल में न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता। ऐसा ही *कठोपनिषद्* में भी कहा गया है–

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने
शरीरे।।[10]

आत्मा न उत्पन्न होती है न मरती है, यह न तो किसी कारण से ही उत्पन्न हुई है और न स्वतः ही कुछ बना है। ये अजन्मा, नित्य सदा से वर्तमान, शाश्वत और पुरातन है तथा शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मारा जाता।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि
ग्रहृणाति नरोऽपराणि।
यथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-1* April- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।[11]

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र त्यागकर नये वस्त्रों को धारण करता है; ठीक वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर नये शरीरों को प्राप्त होती है। इसे शस्त्र काट नहीं सकते, आग इसको जला नहीं सकती, जल इसको गला नहीं सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकता। यह आत्मा अविनाशी है।[12]

कठोपनिषद् में कहा गया है–

'अंगुष्ठमात्र पुरुषो अन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संस्थितः'[13]

अर्थात् – यह आत्मा अंगूठे के समान परिमाण वाली है तथा समस्त प्राणियों के हृदय में निवास करती है।

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम् परमं मम् ।।[14]

इस आत्म तत्त्व को सूर्य चन्द्र तथा अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकते। सूर्य माने आँख, चन्द्रमा माने मन तथा अग्नि माने वाक् अर्थात् इस आत्म तत्त्व को नेत्र ज्योति, मनो ज्योति और वाक्ज्योति इनमें से कोई भी प्रकाशित नहीं कर सकता। तो फिर इसमें यह चमक कहाँ से आई ? सो श्रीकृष्ण बताते हैं –

यदादित्यं यदादित्यंगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चद्रमसि यच्चाग्नौ तजो विद्धि मामकम्।।[15]

सूर्य में स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमा में है और जो तेज अग्नि में है, वह सब इस ब्रह्म का ही तेज है। ऐसा ही *मुण्डकोपनिषद्* में कहा गया है–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्यतो भाति कुतोऽयमग्नि।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य
भासा सर्वमिदं विभाति।[16]

सूर्य, चन्द्र, तारे, बिजली आदि का प्रकाश उस आत्म तत्त्व को प्रकाशित नहीं कर सकते फिर भला अग्नि कैसे प्रकाशित करेगी ? उल्टे इसके प्रकाशित होने पर इसका भेद ज्ञात होता है। उस एक की चमक ही सब में चमक रही है। एक बार पार्थ अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा – हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्म क्या है ? तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा –

'अक्षरं ब्रह्म परम स्वभावोऽध्यात्मुच्यते [17]

परम अक्षर 'ब्रह्म' है अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा 'अध्यात्म' नाम से कहा जाता है। *कठोपनिषद्* में भी ऐसा ही कहा गया है –

'एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म' [18]

समस्त प्रणियों की देह में स्थित यह आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है। वह सबका साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमन्ता, सबका भरण–पोषण करने वाला होने से भर्ता, जीवरूप होने से भोक्ता, ब्रह्मा आदि का स्वामी होने से महेश्वर कहा गया है।वह सब ओर हाथ पैर वाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुख वाला तथा सब ओर कान वाला है; क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है। वह सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है; परन्तु वास्तव में सब इन्द्रियों से रहित है तथा आशक्तिरहित होने पर भी सबका भरण–पोषण करने वाला और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगने वाला है। वह चराचर सब भूतों के बाहर–भीतर परिपूर्ण है और चर–अचर भी वही है।[19] ऐसा ही *ईशावास्योपनिषद्* में कहा गया है –

तदेजति तनैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।[20]

वह चलता है और नहीं भी चलता है। वह दूर है और समीप भी है। वह सबके अन्तर्गत है और सबके बाहर भी है। वह सर्वज्ञ, अनादि, सबका नियन्ता, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सबके धारण–पोषण करने वाला अचिन्त्य स्वरूप, सूर्य के सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप और अविद्या से परे, सच्चिदानन्दघन स्वरूप है। *कठोपनिषद्* में इसे अणु से अणु और महान से महान बताया गया है –

'अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्'[21]

माया शब्द 'मा' और 'या' इन दो शब्दों के योग से बना है मा का अर्थ है नहीं या का अर्थ है जो, अतः माया का अर्थ हुआ नहीं है जो अर्थात् माया। उपनिषदों के अनुसार माया ईश्वर की शक्ति है जिसके द्वारा जगत् की वास्तविक स्थिति और ब्रह्म का यथार्थ स्वरूप आवृत है। *प्रश्नोपनिषद्* में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ब्रह्मलोक में पहुँचने के लिये माया का परित्याग परमावश्यक है –

'तेषामसौ बिरजो ब्रह्मलोको न येशु जिह्मृतं न माया चेति'[22]

माया भगवान श्रीकृष्ण अर्थात् ब्रह्म की आदि शक्ति है जो त्रिगुणमयी एवं बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष नित्य निरन्तर केवल उस परमात्मा को ही भजते हैं वे इस माया के संसाररूपी भवसागर से पार हो जाते हैं। माया के त्रिविध गुणों के सात्विक, राजस और तामस इन भावों से यह सारे संसार का प्राणी समुदाय मोहित हो रहा है। माया को ही अज्ञान, अविद्या एवं अध्यास इत्यादि नामों से सम्बोधित किया गया है। आचार्य शंकर ने भी माया को त्रिगुणात्मक और परमेश्वर की शक्ति बताया है –

अव्यक्तनारी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका या।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते।।[23]

उस अनादि शक्ति का आभास उसके कार्यों से ही होता है; जैसा कि *सांख्यकारिका* में वर्णित है –

सौक्ष्माद् तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यस्तदुपब्धिः [24]

सत्त्वगुण निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और विकार रहित है, वह सुख और ज्ञान के सम्बन्ध से जीवात्मा को उसके शरीर से बाँधता है। रजोगुण कामना और आसक्ति से उत्पन्न होता है और जीवात्मा को उसके कर्मों के फल के सम्बन्ध से बाँधता है। समस्त देहाभिमानियों को मोहित करने वाला तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होता है जो इस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बाँधता है।[25] ज्ञान शब्द 'ज्ञ' धातु में ल्युट् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है; जिसका अर्थ है जानना। विकार सहित प्रकृति और पुरुष को तात्त्विक रूप से जानना ही ज्ञान है –

'क्षेत्रक्षेत्रज्ञोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।'[26]

यह ज्ञान परम पवित्र है क्योकि यह मनुष्यों के समस्त प्रकार के कर्मों को ठीक उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे प्रज्जवलित अग्नि गीले–सूखे समस्त प्रकार के ईंधनों को भस्ममय कर देती है। इस ज्ञान को कितने ही

काल से कर्मयोग के द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने आप ही आत्मा में पा लेता है और तत्काल ही भगवत्प्राप्ति परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।[27] मनुष्य के अन्दर सांसारिक विषय वासनाओं व इच्छाओं का अभाव ही वैराग्य है जैसा कि *श्रीमद्भगवद्गीता* से स्पष्ट है –

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्ता निर्वेदं श्रोतवयस्य श्रुतस्य च।[28]

वेदान्तसार के अनुसार –

नित्यानित्यवस्तुविवेक इहामुत्रार्थफलभोगविरागः[29]

अर्थात् सृष्टि में क्या नित्य है क्या अनित्य है इसका ज्ञान होते ही इस लोक (संसार) और परलोक (स्वर्गादि) सम्बन्धी समस्त विषयों से विरक्ति हो जाती है यही वैराग्य है। अध्यात्म के अनुसार जीवात्मा का आवागमन अर्थात् जन्म–मृत्यु के बन्धन से छुटकारा पाने का नाम ही मोक्ष है। ऐसा ही गीता में कहा गया है –

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाष्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।[30]

मोक्ष प्राप्ति हेतु भगवान श्रीकृष्ण ने *श्रीमद्भगवद्गीता* में तीन मार्ग (ज्ञान, कर्म और भक्ति योग) सुझाये हैं; कोई भी प्राणी इनमें किसी भी एक को अपनाकर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। *श्रीमद्भगवद्गीता* के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण अर्थात् ब्रह्म ही जगत् का मूल कारण है।[31] गीता में कहा गया है –

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।[32]

यह परब्रह्म ज्योतियों की भी ज्योति एवं माया से अत्यन्त परे कहा जाता है। यह परमात्मा बोधस्वरूप, जानने योग्य एवं तत्त्वज्ञान से प्राप्त करने के योग्य है और सबके हृदय में विशेष रूप से स्थित है। उनके सकाश से ही उनकी आद्या शक्ति प्रकृति अथवा माया इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करती है और इस हेतु से यह संसार चक्र घूम रहा है।[33] इस गीता में संसार के स्वरूप को अश्वत्थ वृक्ष के माध्यम से समझाया गया है –

ऊर्ध्वमलूमधः शाखमष्वत्थं प्राहुरव्ययम।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेदस वेदवित्।।
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्यषाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्य लोके।।
नरूपमस्येह तथोपलभ्यतेनान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।

यह संसार पीपल के वृक्ष के समान है आदिपुरुष परमेश्वर इसके मूल हैं, ब्रह्माजी इसकी मुख्य शाखा हैं और वेद इसके पत्ते हैं इसे अविनाशी भी कहते हैं। इस संसार वृक्ष की तीनों गुण रूप जल के द्वारा बढ़ी हुई एवं विषय–भोगरूप कोपलों वाली देव, मनुष्य और तिर्यक आदि योनिरूप शाखायें नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्य लोक में कर्मों के अनुसार बाँधने वाली अहंता–ममता और वासना रूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं। इस संसार वृक्ष का स्वरूप जैसा कहा है वैसा विचारकाल में नहीं पाया जाता; क्योंकि न तो इसका आदि है और न अन्त है तथा न इसकी अच्छी प्रकार से स्थिति ही है।[34] अध्यात्म में मानव जीवन के काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान और हर्ष ये षड़यंत्र शत्रु माने गये हैं उन सब में काम का प्रथम स्थान है और इससे ज्ञान ढका हुआ है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि– ये सब इसके वास स्थान कहे जाते हैं। यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित करके जीवात्मा को मोहित करता है।[35] मन बड़ा चंचल, बलवान, उभयन्द्रिय है जो मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है–

मनएव मनुष्याणां कारण बंधन मोक्षयोः[36]

इसी कारण समस्त अध्यात्म जगत् में मन के निग्रह पर विशेष बल दिया गया है जैसा कि *श्रीमद्भगवद्गीता* से स्पष्ट है –

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्, अभ्यासेन तु कौन्तये वैराग्येण च ग्रह्यते।।[37]

निःसंदेह यह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है; परन्तु यह अभ्यास और वैराग्य की तलवार से वश में हो जाता है। जन्म–मृत्यु का रहस्य अध्यात्म जगत् का प्रमुख तथ्य रहा है कि मरने के पश्चात् मनुष्य का क्या होता है ? इस सन्दर्भ में *श्रीमद्भगवद्गीता* कहती है कि–

'जातस्ये हि ध्रुवो मृत्युध्रुवं जन्म मृतस्य च'[38]

जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है। जब मनुष्य सत्त्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करने वालों के निर्मल लोक को प्राप्त होता है। रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है; तथा तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ मनुष्य कीट, पशु आदि मूढ़योनियों में उत्पन्न होता है।[39] सकामभाव से किये गये कर्मों के कारण मनुष्य आवागमन के चक्र से बन्धता है और निष्काम भाव से किये गये कर्मों के कारण मनुष्य समस्त प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है; तभी तो भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मफल की आशक्ति के त्याग की बात कही है –

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्'[40]

कर्म करने में ही मनुष्य का अधिकार है फल में नहीं क्योंकि फल तो परमात्मा के अधीन है। अतः मनुष्य को कर्मफल का त्याग कर देना चाहिये। जिस काल में मनुष्य मन में स्थित समस्त कामनाओं का त्याग कर, आत्मा से आत्मा से आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है, उस समय वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। जब पुरुष त्रिगुणों को पार कर जाता है तब वह त्रिगुणातीत कहलाता है। *श्रीमद्भगवद्गीता* एक अद्वितीय अलौकिक, विचित्र ग्रन्थ है। इसमें साधक के लिये समस्त उपयोगी सामग्री मिलती है चाहे वह किसी भी देश का, किसी भी वेश का, किसी भी समुदाय का, किसी भी सम्प्रदाय का, किसी भी वर्ण का, किसी भी आश्रम का कोई भी व्यक्ति क्यों न हो। इसका कारण यह है कि इसमें किसी समुदाय–विशेष की निन्दा या प्रशंसा नहीं है, प्रत्युत वास्तविक तत्त्व का ही विवेचन है। वास्तविक तत्त्व अर्थात् ब्रह्म वह है, जो परिवर्तनशील प्रकृति और प्रकृतिजन्य पदार्थों से सर्वथा अतीत और सम्पूर्ण देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदि में नित्य निरन्तर एक रूप रहने वाला है। जो मनुष्य जहाँ है और जैसा है, वास्तविक तत्त्व वहाँ वैसा ही पूर्णरूप से विद्यमान है। परन्तु परिवर्तनशील प्रकृतिजन्य वस्तु, व्यक्तियों में राग–द्वेषरहित होने पर उसका स्वतः अनुभव हो जाता है। इस पर अनेकानेक टीकाएँ लिखी

गयी हैं और कई टीकाएँ लिखी जा रही हैं फिर भी सन्त महात्माओं, विज्ञजनों के मन में नित्य नये भाव प्रकट होते रहते हैं। इस परम पवित्र ग्रन्थ पर कितना ही गहन चिन्तन क्यों न किया जाये फिर भी कोई इसका पार नहीं पा सकता। इसके स्वाध्याय में जैसे–जैसे गहरे उतरते जाते हैं, वैसे–वैसे गहरी बातें मिलती जाती हैं। इस ग्रन्थ में इतनी विलक्षणता है कि अपना वास्तविक कल्याण चाहने वाला कोई भी प्राणी, किसी भी देश, जाति सम्प्रदाय, मत आदि का कोई भी मनुष्य क्यों न हो, इस ग्रन्थ को पढ़ते ही इसमें आकृष्ट हो जाता है। अगर कोई भी जीव इस ग्रन्थ का मन लगाकर पठन–पाठन या श्रवण करे तो उसे अपने उद्धार के लिये बहुत ही सन्तोष जनक उपाय प्राप्त हो जाते हैं। प्रत्येक दर्शन के अलग–अलग अधिकारी होते हैं, लेकिन इस ग्रन्थ की विलक्षणता यह है कि अपना उद्धार चाहने वाले समस्त प्राणी इसके अधिकारी हैं। *श्रीमद्भगवद्गीता* में अध्यात्म जगत् के समस्त तथ्यों को बहुत ही सरल ढंग से विस्तारपूर्वक समझाया गया है। ऐसी संक्षेप में विस्तारपूर्वक यथार्थ और पूरी बात बताने वाला दूसरा अन्य कोई ग्रन्थ दृष्टिगोचर नहीं होता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से *श्रीमद्भगवद्गीता* के सन्दर्भ में दिये गये तथ्यों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि *श्रीमद्भगवद्गीता* के अन्तर्गत अध्यात्म जगत् के समस्त तथ्यों को बड़े ही सरल व सारगर्भित रूप में व्यक्त किया गया गया है; जिन्हें जान कर कोई भी प्राणी अपना कल्याण कर सकता है। प्राणिमात्र के कल्याण भाव से ओत–प्रोत *श्रीमद्भगवद्गीता* को अध्यात्म जगत् में अद्वितीय स्थान प्राप्त है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *श्रीमद्भगवद्गीता, 8/1।*
2. *श्रीमद्भगवद्गीता, 8/3।*
3. *लो. बाल गंगाधर तिलक, श्रीमद्भगवद्गीतारहस्य, हिंदी अनुवाद, श्रीमान माधवराव जी सप्रे, पंद्रहवाँ संस्करण, पुणे, 1988, पृ. 491।*
4. *केशवदेव आचार्य, गीता नवनीत, दिव्य जीवन साहित्य प्रकाशन, पांडिचेरी, 1955, पृ. 44।*
5. *श्रीमद्भगवद्गीता, 7/29।*
6. *श्रीमद्भगवद्गीतामहात्म्य, 6।*
7. *श्रीमद्भगवद्गीतामहात्म्य, 4।*
8. *श्रीमद्भगवद्गीता, 15/7।*
9. *श्रीमद्भगवद्गीता, 2/20।*
10. *कठोपनिषद्, 1/2/18।*
11. *श्रीमद्भगवद्गीता, 2/21,22।*
12. *बृहदारण्यकोपनिषद, 4/15/14।*
13. *कठोपनिषद्, 2/4/5।*
14. *श्रीमद्भगवद्गीता, 15/6।*
15. *श्रीमद्भगवद्गीता, 15/12।*
16. *मुण्डकोपनिषद्, 2/2/10।*
17. *श्रीमद्भगवद्गीता, 8/3।*
18. *कठोपनिषद्, 1/2/16।*
19. *श्रीमद्भगवद्गीता, 13/13–15।*
20. *ईशावास्योपनिषद्, 6।*
21. *कठोपनिषद्, 1/2/20।*
22. *प्रश्नोपनिषद्, 1/16।*
23. *विवेकचूड़ामणि, 4/110।*
24. *सांख्यकारिका, 8।*
25. *श्रीमद्भगवद्गीता, 14/6–8।*
26. *श्रीमद्भगवद्गीता, 13/2।*
27. *श्रीमद्भगवद्गीता, 4/37–39।*
28. *श्रीमद्भगवद्गीता, 2/52।*
29. *वेदान्तसार (साधनचतुष्टयम्), 1।*
30. *श्रीमद्भगवद्गीता, 8/15।*
31. *श्रीमद्भगवद्गीता, 7/6।*
32. *श्रीमद्भगवद्गीता, 13/17।*
33. *श्रीमद्भगवद्गीता, 9/10।*
34. *श्रीमद्भगवद्गीता, 15/1–3।*
35. *श्रीमद्भगवद्गीता, 4/38–39।*
36. *श्रीविष्णुपुराण, 6/7/28।*
37. *श्रीमद्भगवद्गीता, 6/35।*
38. *श्रीमद्भगवद्गीता, 2/27।*
39. *श्रीमद्भगवद्गीता, 14/14–15।*
40. *श्रीमद्भगवद्गीता, 2/47।*